International Journal of Hindi Research
ISSN: 2455-2232
Impact Factor: RJIF 5.22
www.hindijournal.com
Volume 4; Issue 1; January 2018; Page No. 51-53

स्वातन्त्रयोत्तर युगीन महिला उपन्यासकारों की रचनाओं में स्त्री विमर्ष

डॉ० रेखा
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, श्रीमती रामदुलारी कॉलेज, ओल, मथुरा, उत्तर प्रदेश, भारत।

सारांश
सामान्यतः 'विमर्ष' का अर्थ है – ''जीवंत बहस''। किसी भी समस्या को एक कोण से न देखकर भिन्न–भिन्न मानसिकताओं, दृष्टियों संस्कारों एवं वैचारिक–प्रतिबद्धताओं का समाहार करते हुए उलट–पलट कर देखना या उस समग्रता को देखने की कोशिश करना। इसके अलावा विमर्ष का अभिप्राय– विवेचना, समीक्षा, तथ्यानुसंधान, तर्क, ज्ञान एवं किसी तथ्य की जानकारी हेतु किसी से परामर्श या सलाह करने से भी हैं।
साहित्य ही एक ऐसा माध्यम हैं, जिसके माध्यम से किसी भी समस्या एवं उसके समाधान की बखूबी अभिव्यक्ति की जा सकती है, चूँकि साहित्य आन्दोलन को प्रभावित करता है और आन्दोलन साहित्यकार (लेखक) को। हर भाषा के साहित्य विमर्ष का अपना सामाजिक आधार होता है। अपनी समस्याऐं और अपना स्वरूप होता है। यह संभव है कि कुछ मुद्दों को लेकर उसका एक असीम स्वरूप निर्मित हो जाए, लेकिन यथार्थ में वह अपने समय एवं समाज के सापेक्ष ही होता है। इसलिए किसी भी विषय के किसी भी विमर्ष का मूल्यांकन करते समय उसके सामाजिक ढाँचे को भी ध्यान में रखना परमावष्यक है।

मूल शब्द: विमर्ष, महिला उपन्यासकार, स्वातन्त्रयोत्तर, साहित्य

प्रस्तावना
हमारे समाज में स्त्रियों की दयनीय दशा रही है। यही कारण है कि स्त्रियों के प्रति रागात्मक, तादात्म्य स्थापित करना हमारी महिला उपन्यासकारों का प्रमुख प्रयोजन रहा है। स्त्री विमर्ष को नया आयाम देकर इन महिला उपन्यासकारों ने साहित्य की भावना का विस्तार किया है, क्योंकि किसी भी क्षेत्र में नवाचार का अविर्भाव होता है यथास्थितिवाद के प्रति विरोध और आवश्यकतानुसार विद्रोह कर उसके विकल्प की तलाश से।
प्रो० रोहणी अग्रवाल के अनुसार स्त्री विमर्ष का अभिप्राय– ''स्त्री को केन्द्र में रखकर समाज, संस्कृति, परम्परा, एवं इतिहास का पुर्नरीक्षण करते हुए स्त्री की स्थिति पर मानवीय दृष्टि से विचार करने की अनवरत प्रक्रिया से है।''[1]
''स्त्री विमर्ष'' को हम पुरूष की दृष्टि से कहें तो इस 'विमर्ष' का सम्बन्ध नारी सौन्दर्य, स्त्री पहनावा, स्त्री उत्पीड़न एवं स्त्री की कमजोरी आदि से है। जब कि स्त्री की नजर में ''स्त्री विमर्ष'' का सीधा सम्बन्ध अपनी शक्तियों से परिचित करवाने से हैं। स्पष्ट है कि ''स्त्री विमर्ष'' के अन्तर्गत उनका अतीत या समकालीनता प्रमुख नहीं रहती वरन–भूत, वर्तमान एवं भविष्य तीनों में ही एक दूसरे की अन्विति एवं संगतियों का विष्लेशण करने का प्रभाव प्रधान रहता है। अतः हम ''स्त्री विमर्ष'' को स्त्री चेतना के प्रसार का माध्यम भी कह सकते हैं।
हिन्दी उपन्यासों में स्त्री का संघर्ष केवल आत्म–सम्मान की स्वतंत्रता या लैंगिक भेदभाव की लड़ाई तक ही सीमित नहीं है, बल्कि स्त्री को कई मोर्चों पर एक साथ खड़े होने का बल मिला है। साथ ही भारतीय समाज और संस्कृति के रूढ़िवादी पुरूषसत्तात्मक ढाँचे के बहुस्तरीय विदूशताओं को भी उजागर किया है। हिन्दी उपन्यासों में ''स्त्री विमर्ष'' की विचार धारा अकस्मात एक दिन में ही विकसित नहीं हुई है, बल्कि एक लम्बे संघर्ष और समझ की प्रतिक्रिया के परिणाम स्वरूप है। क्योंकि यह सर्वविदित है कि हिन्दी की एक अपनी वैचारिकी होती है और उस विचार का एक प्रारूप।
चूँकि हमारा देश पुरूष प्रधान के साथ ही पितृसत्तात्मक भी है जहाँ स्त्रियाँ तमाम प्रतिबन्धों के अधीन अपने मन को कहाँ जीती है, किस कोने में जीती हैं? किस कदर पुरूष वर्ग नारी के कोमल मन रूपी मृदुल पंखुड़ियों को कुचल रहा है। जबकि उसका भी मन हैं, अपना एक अस्तित्व है जो स्वछन्द होकर खुले आसमान में अपने पर फैलाकर उड़ना चाहती है। जबकि प्रायः देखा जाता है, कि जो स्त्रियाँ शिक्षित हैं और नौकरी भी करती है, लेकिन फिर भी वह अपने घर में अपनी ही तनख्वाह को लेकर परतन्त्र हैं। ऐसे ही असहाय स्त्रियों की बेवसी पर कुढाराघात करते हुए महिला उपन्यासकारों को देखा जा सकता है। इन महिला रचनाकारों की रचनाओं का सम्बन्ध स्त्री की पहचान या किसी भी स्तर पर विषयगत अनुभवों के संगठित स्वरूप से होता है। स्त्री चेतना और विमर्ष के विकास का ही परिणाम है कि आज सामाजिक, राजनैतिक, व्यवसायिक और मनोविज्ञान के क्षेत्र में पुरूष के समान ही नहीं, बल्कि पुरूष से आगे बढ़कर स्त्रियाँ निष्षंक सेवाएं दे रही हैं। वह अब श्परतन्त्र नहीं है। स्त्री चेतना का ही चरम है जहाँ उसे स्वच्छन्द अधिकार के साथ कहते हुए देखा जा सकता है – ''यह मेरा घर नहीं है क्या? घर अपना कैसा होता है, मेरे बच्चे यहाँ हैं, पति हैं, घर चलाने को पैसे मैं भी देती हूँ, तो इसकी मालकिन मैं भी हूँ। मेरा यहाँ से चले जाने का तो सवाल ही नहीं उठता''[2]
यूँ तो चेतना एक अनपढ़ औरत में भी हो सकती है लेकिन शिक्षा कहीं न कहीं आत्मनिर्भरता को चेतना के साथ तराशती है। शिक्षित स्त्री जब अपनी बुद्धि से काम लेती है और भावुकता से विमुख हो जाती है, तब तो उसका रूप ही दूसरा होता है। जहाँ उसे मर्दों का मुआयना करते देखा जा सकता है। शशिप्रभा शास्त्री के उपन्यास ''परछाइयों के पीछे'' के पात्र हनीफ सहाब की बेगम सुमित्रा की बात सुन वह उसे समझाती हुई कहती है किः–

''माफ कीजिए बहन मैंने आपकी सारी बातें सुनी हैं। औरतों ने ही आदमियों को सिर पर चढ़ाया है। ऐसे आदमियों के साथ तो समझौता करने का सवाल ही नहीं उठता। ऐसे आदमियों को तो हम औरतों को ही सबक सिखाना होगा।''[3]

साठ–पैंसठ वर्ष पूर्व तक स्त्रियों की सामाजिक स्थिति पर उनके सशक्तीकरण उनकी उपलब्धियों और संघर्षों पर उनके रचे साहित्य तथा अवधारणाओं पर गंभीरता से चिंतन नहीं किया जाता था, क्योंकि स्त्री लेखन को बहुत सम्माननीय दर्जा प्राप्त नहीं था या मात्र एक आरक्षित रियासत दे दी जाती थी, क्योंकि उनकी परिधि बहुत ही सीमित थी। स्त्रियों पर जो भी लेखन हुआ वह पुरूषों के द्वारा ही किया गया। वक्त के साथ समय ने करवट ली है, जो पिछले दो दशकों से विश्व के हर क्षेत्र में देखा जा सकता है। स्त्रियाँ ही स्वयं एक साहित्यकार के रूप में अपने बारे में स्वयं को विषय बनाकर निष्पक्ष भाव से चर्चा कर रही हैं। अपनी तमाम समस्याओं से जुड़े विषयों को साहित्य के माध्यम से उजागर कर रही हैं।

मन्नू भंडारी का उपन्यास 'आपका बंटी' हिन्दी साहित्य में एक मील का पत्थर है जो समय से आगे की कहानी कहता है और हर समय का सच होने के कारण कालातीत भी है। शकुन के जीवन की सबसे बडी त्रासदी यही है कि वह न तो पूरी तरह पत्नी बनकर जी सकी न माँ बनकरः–

''क्यों रे बंटी, तेरा मन नहीं होता है कि तेरे मम्मी पापा साथ रहें, तू नहीं जानता? बुद्धू कहीं का। मम्मी–पापा की जो लड़ाई होती है न। उसे ही तलाक कहते हैं।''[4]

यह केवल शकुन की ही त्रासदी नहीं है, बल्कि हिन्दुस्तान की हजारों स्त्रियों की भी यही त्रासदी है।

''आपका बंटी'' नामक उपन्यास सिर्फ बच्चों की त्रासदी का ही उपन्यास नहीं है, बल्कि इसमें शकुन की त्रासदी को भी बहुत ही गहराई के साथ अभिव्यक्ति दी है।

''टीटू कह रहा था– तेरे मम्मी पापा में तलाक, हो गया है अब पापा कभी साथ नहीं रह सकते। मम्मी ने जैसे तैसे कह दिया–क्यों रे तू और टीटू ऐसी बातें क्यों करते हो? मम्मी की बातों में गुस्सा था या दुःख पता नहीं चला।''[5]

हमारे समाज में अनमेल विवाह रूपी कुप्रथा भी आज समाज के सम्मुख एक विकराल समस्या का रूप धारण कर चुकी है। जिसे ऊषा प्रियंवदा जी ने अपने उपन्यास 'शेष यात्रा' में अभिव्यक्ति देते हुए कहा है कि :–

प्रणव एवं अनु का विवाह भी अनमेल विवाह है– एयर पोर्ट पर एक मुलाकात में ही लड़की ने बिना सोचे समझे प्रणव को अपना सर्वस्व समर्पित कर दिया, जिससे अनमेल विवाह की समस्या उठ खड़ी हुईः–

''प्रणव कहता है– मुझे एक बेवकूफ लड़की चाहिए थी।''[6]

इतना ही नहीं कृष्णा सोवती की ''डार से बिछुरी'' उपन्यास की पाषो की जिन्दगी भी अनमेल विवाह के कारण बर्वाद हो जाती है।''[7]

हमारे समाज में लज्जाशीलता और सौन्दर्य से युक्त चंचलता और भावनाओं के उद्वाम आवेग से पूर्ण बहू को कुलशीलवती युवती माना जाता है। सदैव निष्काम भाव से शान्ति सुख की धारा को प्रवाहित करने वाली स्त्री का 'बहू' रूप परिवार एवं समाज के लिए कल्याणकारी माना जाता है, मगर जब इस बहू को अत्याचारों एवं कटाक्ष वाणों से वींधा जाता है, तो वहीं 'बहू' विद्रोह कर उठती है। 'बहू' के आदर्श एवं विद्रोही दोनों ही रूपों को इन रचनाकारों ने अपनी रचनाओं में सहज अभिव्यक्ति दी है।

यूँ तो वर्तमान युग में शैक्षिक विकास और औद्योगिक क्रान्ति ने स्त्रियों और पुरूषों को समान रूप से प्रभावित किया है, एक ही परिवार में अनपढ़ और रूढ़िवादी स्त्री पुरूष के साथ अत्यन्त प्रबुद्ध एवं सुशिक्षित सदस्य के रूप में बहू को रहते हुए देखा जा सकता है। नई और पुरानी पीढ़ीयों का अन्तराल उनके मध्य विद्यमान रहना स्वभाविक है। युग की अभिनव चेतना से अनुप्राणित युवावर्ग भी अर्थहीन परम्परागत निषेधों को स्वीकार नहीं करता।

शिवानी के उपन्यास 'चौदह फेरे' में उपन्यास के पात्र कर्नल का विवाह नन्दी से हो जाता है, जबकि नन्दी एक आदर्श बहू की तरह घर के सभी सदस्यों की सेवा करती है, परन्तु कर्नल को यह बिल्कुल पसंद नहीं है। वह चाहता है, कि नन्दी शिक्षित पत्नी की तरह उससे प्यार भरी बातें व अठखेलियाँ करे। वह घर के बुजुर्ग सदस्यों को बूढ़े खूँसट की संज्ञा देने तक से भी नहीं चूकता ''जब नन्दी पति के कमरे में पहुँचती है, तो कर्नल उसे झिड़कियों से चीरकर रख देता है, हद है, लगता है तुम्हें तो बस घर के खूँसट–बूढ़े और बूढ़ियों से ही मुहब्बत है। रात भी वहीं बिता आतीं।''[8]

वर्तमान जीवन की परिस्थितियों में परिवार विघटन में जहाँ एक ओर अनेक सामाजिक परिस्थितियों एवं लज्जाजनित कारण विद्यमान हैं, तो वहीं दूसरी ओर पारिवारिक कलह का सूत्र भी एक महत्वपूर्ण कारण रहा है। यह पारिवारिक मतभेद ही व्यक्ति को विद्रोही बना देते हैं यह विद्रोही भावना जब बहू के मन में आजाये तो वह अपने आपे से बाहर हो जाती है।

मन्नू भंडारी के उपन्यास 'शिवानी' में भी मिनी अपनी सास एवं परिवार वालों से असन्तुष्ट रहती है। वह अपनी स्वतन्त्रता के लिए विद्रोह कर उठती है–

''घर में सबके उचित–अनुचित व्यवहार को चुपचाप सहने वाले घनश्याम का यह रूप भी नया था और स्वर भी। मिनी अवाक् से उसे देख रही थी।''[9]

माँ का दुर्व्यवहार हर दिन बढ़ता ही चला जा रहा है था तो मिनी भीतर ही भीतर संकल्प करती है– ''घनश्याम के प्रति माँ के इस दुर्व्यवहार पर वह अब चुप नहीं रहेगी उसकी दिन व दिन बड़ती ज्यादितियों के सामने वह पति को अकेला न छोड़ेगी।''[10]

यहाँ मिनी के माध्यम से महिला रचनाकारों ने प्रबुद्ध बहू के रूप को दिखाया है। अपनी महिला पात्रों के माध्यम से रचनाकार समाज को दिखाना चाहती है कि अब जमाना बदल गया है, पहले स्त्री को चहार दीवार में कैद रखा जाता था परन्तु अब यह सहन न होगा।

निष्कर्ष

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि इन महिला रचनाकारों ने अपने साहित्य के माध्यम से स्त्री विमर्ष को आधार बनाकर स्त्रियों की समस्याओं, वैचारिक प्रतिबद्धताओं भिन्न–भिन्न मानसिकताओं के साथ स्त्री के सवल रूप को उजागर करने का सफल प्रयास किया है। इसके साथ ही स्त्रियों के अस्तित्व के प्रति अपनी बुलन्द आवाज गुंजित की है। हिन्दी साहित्य के सन्दर्भ में स्त्री विमर्ष पर महिला रचनाकारों का योगदान सराहनीय व प्रशंसनीय है।

संदर्भ

1. हिन्दी साहित्य वैचारिक पृष्ठभूमि सं० लाल चन्द गुप्त मंगल पृ० 229
2. शशि प्रभाशास्त्री – परछाइयों के पीछे–पृ० 141
3. शशि प्रभा शास्त्री– परछाइयों के पीछे– पृ० 163
4. मन्नू भंडारी – आपका बंटी पृ० 17

5. मन्नू भंडारी – आपका बंटी पृ० 20
6. ऊषा प्रियंवदा–शेषयात्रा – पृ० 33
7. कृष्णा सोवती–डार से विछुरी– पृ० 122
8. शिवानी – चौदह फेरे – पृ० 07
9. मन्नू भंडारी – शिवानी – पृ० 61
10. मन्नू भंडारी – शिवानी – पृ० 83